दृष्टि The Vision

निबंध-दृष्टि

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति
निशान्त जैन (आई.ए.एस.)

2019 की IAS मुख्य परीक्षा तथा विगत वर्षों में पूछे गए निबंधों के हल सहित निबंध लेखन की तकनीक पर विस्तृत चर्चा और 125+ मॉडल निबंध

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

Quick Book शृंखला की पुस्तकें

NCERT शृंखला की पुस्तकें

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें 8448485516, 87501-87501, 011-47532596

खंड–1

निबंध लेखन की तकनीक पर विस्तृत विवेचन तथा व्यावहारिक उदाहरण

निबंध लेखन : क्या, क्यों, कैसे?

– डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

निबंध लिखना विद्यार्थी जीवन की सबसे कठिन चुनौतियों में से एक है। पढ़ाई चाहे विद्यालय स्तर की हो, कॉलेज के स्तर की या प्रतियोगी परीक्षाओं के स्तर की, निबंध लेखन की चुनौती विद्यार्थियों के सामने बनी ही रहती है। कई विद्यार्थियों के मन में यह सहज सवाल उठता है कि आखिर उनसे निबंध क्यों लिखवाया जाता है? निबंध को पढ़कर कोई उनके मानसिक स्तर या व्यक्तित्व का मूल्यांकन कैसे कर सकता है? और अगर कर सकता है, तो उन्हें एक बेहतरीन निबंध कैसे लिखना चाहिये?

इस लेख के माध्यम से हम ऐसे ही कुछ प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश करेंगे। विश्वास रखिये कि निबंध लेखन की कला कोई जन्मजात कला नहीं है, इसे कठोर अभ्यास से निश्चित तौर पर साधा जा सकता है। अगर आप भी ठान लेंगे कि आपको प्रभावशाली निबंध-लेखक बनना है तो एक-दो महीनों के निरंतर और रणनीतिक अभ्यास से आप निश्चय ही इस सपने को साकार कर लेंगे।

निबंध क्या है?

सबसे पहले हम यही समझने की कोशिश करते हैं कि एक विधा (Genre) के रूप में निबंध क्या है और यह अन्य विधाओं से कैसे अलग है? 'विधा' (Genre) शब्द शायद आपको नया लग रहा होगा। इसका अर्थ साहित्य, संगीत या कला की विशेष शैलियों से होता है। उदाहरण के लिये, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, लेख और समीक्षा विभिन्न विधाओं के उदाहरण हैं। किसी विधा में उतरने से पहले बेहतर होता है कि उसके चरित्र को ठीक से समझ लिया जाए। मुझे विश्वास है कि अगर आपको निबंध विधा की ठीक समझ होगी तो निबंध लेखन की प्रक्रिया में आप अपना सतत् मूल्यांकन भी कर सकेंगे और प्रभावशाली निबंध भी लिख सकेंगे।

कुछ लोग मानते हैं कि निबंध एक प्राचीन भारतीय विधा है जिसका मूल संस्कृत साहित्य में खोजा जा सकता है। यह बात सही है कि संस्कृत में 'निबंध' नाम की एक विधा मौजूद थी जिसमें धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों की विवेचना की जाती थी। इस विधा में लेखक पहले अपने से विरोधी सिद्धांतों को चुनौती के तौर पर पेश करता था और फिर एक-एक करके अपने तर्कों, प्रमाणों की मदद से उन सभी सिद्धांतों को ध्वस्त करता था। चूँकि इस विधा में प्रमाणों का 'निबंधन' किया जाता था, इसीलिये इसका नाम 'निबंध' पड़ गया था।

सवाल यह है कि आज हम जिसे निबंध कहते हैं, वह यही विधा है या उससे अलग? इसका सामान्यत: प्रचलित उत्तर है कि आज का निबंध अपने चरित्र और स्वरूप में संस्कृत के 'निबंध' पर नहीं बल्कि अंग्रेज़ी के 'Essay' पर आधारित है। अत: निबंध विधा को समझने के लिये हमें आधुनिक यूरोपीय साहित्य की पृष्ठभूमि का अनुसंधान करना चाहिये।

माना जाता है कि एक आधुनिक विधा के रूप में 'निबंध' की शुरुआत 1580 ई. में फ्राँस के लेखक मॉन्तेन (Montaigne) के हाथों हुई। मॉन्तेन ने अपने निबंधों के लिये 'ऐसे' (Essay) शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ होता है- 'प्रयोग'। उस समय फ्राँस में कहानी, नाटक, कविता जैसी कई विधाएँ प्रचलित थीं पर निबंध का कलेवर उन सबसे अलग था। इसमें कहानियों की तरह न तो विभिन्न चरित्र/पात्र थे और न ही घटनाएँ थीं। नाटक में कहानी के साथ-साथ दृश्य और मंच की भी बड़ी भूमिका होती है, पर निबंध में यह सब भी नहीं था। अगर कविताओं से तुलना करें तो उनमें छंद, तुक और लय जैसे ढाँचे उपस्थित होते हैं जो रचनाकार को एक बुनियादी फ्रेमवर्क उपलब्ध करा देते हैं; पर निबंध में ये भी नहीं थे क्योंकि निबंध पद्य (Poetry) में नहीं, गद्य (Prose) में था।

स्पष्ट है कि निबंध इन सभी विधाओं से अलग था। एक अर्थ में यह सबसे कठिन विधा के रूप में उभरा क्योंकि इसमें पाठक को बांधकर रखना सबसे मुश्किल काम था। यह मुश्किल इसलिये था क्योंकि इसमें मनोरंजन पैदा करने के लिये न घटनाएँ

थीं और न ही कहानियाँ। इसमें सिर्फ 'विचार' या 'भाव' थे जो बिना किसी ओट या माध्यम के सीधे ही व्यक्त होने थे। अगर निबंध-लेखक के पास सूक्ष्म विचार-क्षमता और सीधे दिल तक पहुँचने वाली भाषा हो तो ही वह अपने पाठक को चमत्कृत कर सकता था। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में निबंध लेखन के बादशाह कहे जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा भी है कि *"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।"* कहने का भाव यही है कि कविता लिखने की तुलना में गद्य लिखना कठिन होता है क्योंकि गद्य के लेखक के पास तुक और लय के बने-बनाए खाँचे मौजूद नहीं होते; और गद्य की विभिन्न विधाओं में आपसी तुलना करें तो कहानी, उपन्यास और नाटक की तुलना में निबंध लिखना सबसे कठिन है क्योंकि निबंध में बाकी तीनों विधाओं की तरह चरित्रों, घटनाओं और कल्पनाओं की खुली छूट नहीं होती। निबंध का लेखक तो बिना किसी परदे, ओट या ढाल के सीधे पाठक के सामने उपस्थित होता है और हर क्षण यह खतरा झेलता है कि कहीं पाठक ऊबकर पन्ना न पलट दे।

अभी तक की चर्चा से आपको निबंध विधा के बारे में कुछ-कुछ अनुमान तो लग गया होगा पर अभी भी उसकी मुकम्मल तस्वीर नहीं बनी होगी। इसकी एक वजह यह भी है कि निबंध की कोई निश्चित परिभाषा है ही नहीं। जैसे-जैसे निबंध-लेखन परंपरा का विकास हुआ, निबंधकारों ने अपने-अपने तरीके से इस विधा में नए प्रयोग किये। हर नए प्रयोग के साथ यह विवाद उठा कि इसे निबंध विधा के अंतर्गत शामिल किया जाए या नहीं? इसी वाद-विवाद के माध्यम से निबंध के नए-नए प्रकार बनते गए और निबंध की एक निश्चित परिभाषा देना मुश्किल होता गया।

उदाहरण के लिये, मॉन्तेन के रास्ते पर चलते हुए एडीसन और डॉ. सैमुअल जॉनसन जैसे पश्चिमी निबंधकारों ने निबंध को एक भावपरक, कल्पनाप्रधान, अनियंत्रित, उच्छृंखल तथा मनमौजी रचना के रूप में परिभाषित किया और उसमें विचार, तर्क, विश्लेषण जैसे तत्त्वों को खास महत्त्व नहीं दिया। डॉ. सैमुअल जॉनसन ने निबंध की जो परिभाषा दी, वह इस नज़रिये को व्यक्त करने वाली प्रतिनिधि परिभाषा बन गई। उन्होंने कहा कि *"निबंध मन की मुक्त मौज, अनियमित व अपरिपक्व सी रचना, एक ऐसी कृति है जो न तो नियमबद्ध है और न ही व्यवस्थित" ('An Essay is a loose sally of mind; an irregular undigested piece, not a regular and orderly composition')*। मॉन्तेन ने भी लगभग ऐसी ही परिभाषा देते हुए निबंध को *"मनमौजी उक्तियों व अभिव्यक्तियों की मौज"* बताया है। अंग्रेज़ी और हिंदी में कई ऐसे लेखक हुए हैं जो इसी परिभाषा को प्रमाणित करते हुए निबंध लिखते रहे। ऐसे निबंधों को हिंदी में प्राय: ललित निबंध कहे जाने की परंपरा रही है। प्रतापनारायण मिश्र और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के कई निबंध इस परंपरा में मील के पत्थर माने जाते हैं। ऐसा नहीं कि इन निबंधों में विचार पक्ष होता ही नहीं; वह होता है किंतु कल्पनाओं और भावनाओं की तुलना में दबा हुआ सा रहता है।

दूसरी तरफ, अंग्रेज़ी तथा हिंदी दोनों भाषाओं में कुछ ऐसे लेखक भी हुए हैं जिन्होंने निबंध को एक गंभीर, चिंतनपरक, विश्लेषणात्मक तथा विचारप्रधान रचना के रूप में स्वीकार किया है। पश्चिम की बात करें तो मॉन्तेन के पहले निबंध के 17 वर्ष बाद 1597 ई. में उनके समकालीन लेखक फ्राँसिस बेकन ने अंग्रेज़ी में ऐसे निबंधों की परंपरा शुरू की। उन्होंने बौद्धिकता से भरी रचनाएँ लिखीं और उन्हें 'निबंध' (Essay) नाम दिया। धीरे-धीरे मान लिया गया कि बेकन की गंभीर, विचारप्रधान रचनाएँ भी निबंधों की ही एक नई शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसा होते ही बेकन भी (मॉन्तेन के साथ) निबंध के प्रवर्तक माने जाने लगे। इस प्रकार, 16वीं सदी के अंत में ही निबंध की दो शैलियाँ प्रचलित हो गईं- पहली, मनमौजी निबंधों की शैली; और दूसरी, गंभीर निबंधों की शैली।

बेकन के प्रयोगों का ही परिणाम था कि निबंध शब्द का अर्थ-विस्तार होने लगा। आगे चलकर, कई क्षेत्रों के महान लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाओं को 'निबंध' के तौर पर प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिये, थॉमस माल्थस ने *'जनसंख्या के सिद्धांत पर एक निबंध' ('An essay on the principle of population')* लिखा तो जॉन लॉक ने *'मानवीय समझ पर निबंध' ('An essay concerning human understanding')* लिखकर निबंध विधा को दर्शन की बारीकियों से जोड़ दिया। यहाँ तक कि बर्नार्ड शॉ ने जो भूमिकाएँ लिखीं, वे भी निबंध की श्रेणी में शामिल मानी गईं और बर्ट्रेण्ड रसेल के सूक्ष्म वैचारिक साहित्य को भी निबंध ही कहा गया।

हिंदी साहित्य में भी शुरू से निबंध की ये दोनों शैलियाँ प्रचलित रही हैं। अगर प्रतापनारायण मिश्र और हज़ारी प्रसाद द्विवेदी मनमौजी शैली में ज़्यादा रमे हैं तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचंद, डॉ. नामवर सिंह और राजेन्द्र यादव जैसे लेखक गंभीर, विचारप्रधान निबंधों के रास्ते पर चले हैं। इस तरह के निबंधों (गंभीर, विचारप्रधान निबंधों) में प्राय: एक समस्या केंद्र में होती है और लेखक बहुत तार्किक ढंग से उस समस्या के सभी आयामों को खोलता हुआ चलता है। ज़रूरत पड़ने पर वह थोड़ी बहुत कल्पनाएँ भी करता है, किसी-किसी बिंदु पर पाठक की भावुकता को भी कुरेदता है, अपनी ज़िंदगी के उदाहरण भी देता है; पर कुल मिलाकर, विचार और विश्लेषण पक्ष की प्रधानता पूरे निबंध में बनी रहती है।

खंड–2

निशान्त जैन द्वारा लिखित रणनीतिक विश्लेषण तथा कुछ मॉडल निबंध

सिविल सेवा परीक्षा में निबंध : मेरी दृष्टि में

[इस भूमिका तथा निबंधों में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक के निजी विचार हैं। ये निबंध लेखक द्वारा तैयारी के दौरान प्रतियोगी परीक्षाओं के अभ्यर्थियों हेतु नमूने के तौर पर लिखे गए हैं।]

सिविल सेवा परीक्षा में निबंध के प्रश्नपत्र की प्रासंगिकता और महत्त्व के संबंध में किसी को कोई संदेह नहीं है। दरअसल निबंध का यह 250 अंकों का प्रश्नपत्र मुख्य परीक्षा के नवीनतम पैटर्न में सफलता की एक बड़ी अनिवार्यता बनकर उभरा है। सिविल सेवा परीक्षा 2014 की टॉपर इरा सिंघल और मुझे, दोनों को ही निबंध में 160 अंक प्राप्त हुए हैं, जो अभी तक प्राप्त अधिकतम जानकारी के मुताबिक सर्वाधिक अंक हैं। सुखद तथ्य यह है कि मेरे द्वारा हिन्दी माध्यम में लिखे गए निबंधों को भी सुश्री इरा सिंघल के अंग्रेज़ी माध्यम में लिखे गए निबंधों के बराबर अंक प्राप्त हुए। इससे अनिवार्य तौर पर तो नहीं, पर सामान्य तौर पर यह ज़रूर माना जा सकता है कि निबंध के प्रश्नपत्र में भाषा कोई समस्या नहीं है और यदि बेहतर और सटीक रणनीति बनाकर अच्छे निबंध लिखे जाएँ तो श्रेष्ठ अंक हासिल किये जा सकते हैं।

प्रथमदृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि निबंध उन सात प्रश्नपत्रों की तरह ही 250 अंकों का एक प्रश्नपत्र है, जिसके अंक मुख्य परीक्षा के कुल स्कोर (1750 अंक) में जोड़े जाते हैं; पर बारीकी से समझने पर यह बात सामने आती है कि निबंध का प्रश्नपत्र इसमें प्राप्त होने वाले अंकों के लिहाज़ से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। निबंध के प्रश्नपत्र में मिले गत वर्षों के अंक यह बताते हैं कि निबंध में प्राप्तांकों की रेंज बहुत व्यापक है। इसका अर्थ है कि एक ओर जहाँ यह प्रश्नपत्र 50 या उससे भी कम अंकों का स्कोर दे देता है, वहीं दूसरी ओर कुछ लोग इसमें 150 या उससे अधिक अंक भी प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह यह 100 अंकों का गैप न केवल आपकी रैंक को प्रभावित करता है बल्कि अंतिम रूप से आपके चयन में भी निर्णायक हो जाता है।

अत्यधिक महत्त्व और बढ़ती प्रासंगिकता के बावजूद एक दिलचस्प पहलू यह भी है कि संघ लोक सेवा आयोग की प्रतिष्ठित 'सिविल सेवा परीक्षा' में यह अभ्यर्थियों द्वारा सर्वाधिक उपेक्षित-सा प्रश्नपत्र है, जिसकी तैयारी से लेकर इसमें प्रदर्शन तक, प्रतियोगी मित्र एक निश्चिंतता या उपेक्षा के भाव से इसे डील करते हैं। कई अभ्यर्थी तो अपनी तैयारी की पूरी अवधि के दौरान पहला निबंध सीधे मुख्य परीक्षा के केंद्र पर जाकर ही लिखते हैं। कई अभ्यर्थियों का यह भी मानना है कि चूँकि यह प्रश्नपत्र अत्यधिक आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव) प्रकृति का है और इसकी तैयारी का कोई स्पष्ट फॉर्मूला नहीं है, अतः इसकी तैयारी में समय देने का कोई लाभ ही नहीं है। मेरी समझ में निबंध के प्रश्नपत्र की यह घोर उपेक्षा अविवेकपूर्ण और कदाचित् आत्मघाती है। यदि मैं अपनी रणनीति और तैयारी की समग्र प्रक्रिया के संदर्भ में बात करूँ, तो यह सत्य है कि मेरी रणनीति में निबंध का अति महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और मैं इसकी तैयारी को प्राथमिकता पर रखता रहा हूँ। सौभाग्य से उसका सुफल मुझे प्राप्त भी हुआ और मेरी श्रेष्ठ रैंक में इस प्रश्नपत्र ने बेहद प्रभावी भूमिका भी निभाई है।

यद्यपि निबंध एक आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव) प्रकृति का प्रश्नपत्र है और इसकी तैयारी करने का कोई रटा-रटाया फॉर्मूला नहीं हो सकता। साथ ही, इसके प्राप्तांकों को लेकर कोई सटीक भविष्यवाणी कर पाना भी उचित नहीं है; फिर भी कुछ ऐसी प्रविधियाँ, तकनीकें और तथ्य ज़रूर हो सकते हैं, जो निबंध के प्रश्नपत्र में न केवल बेहतर प्रदर्शन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, बल्कि मेरी समझ में कम-से-कम यह तो सुनिश्चित कर ही सकते हैं कि एक अभ्यर्थी को औसत से बेहतर अंक प्राप्त हों। यह मेरा विश्वास है कि निबंध की समुचित तैयारी और सटीक रणनीति से इस अति महत्त्वपूर्ण प्रश्नपत्र में बेहतर और उत्कृष्ट प्रदर्शन किया जा सकता है। इस लेख के माध्यम से मेरा प्रयास है कि मैं इस निबंध के प्रश्नपत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन के लिये कुछ कारगर उपायों, और रणनीति पर चर्चा कर इसे अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ और सरल बनाने की कोशिश करूँ।

इस लेख के माध्यम से मैं सबसे पहले निबंध के प्रश्नपत्र से जुड़े सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करते हुए इस प्रश्नपत्र से जुड़ी विविध उलझनों के निराकरण की कोशिश करूंगा। सबसे पहले समझें कि संघ लोक सेवा आयोग की इस प्रश्नपत्र में

अभ्यर्थियों से क्या अपेक्षाएँ हैं। आधिकारिक पाठ्यक्रम के अनुसार, *"उम्मीदवारों को विविध विषयों पर निबंध लिखने होंगे। उनसे अपेक्षा की जाएगी कि वे निबंध के विषय पर ही केंद्रित रहें तथा अपने विचारों को सुनियोजित रूप से व्यक्त करें और संक्षेप में लिखें। प्रभावी और सटीक अभिव्यक्ति के लिये अंक प्रदान किये जाएंगे।"*

आइये, सबसे पहले निबंध के इस निर्धारित पाठ्यक्रम का अभिप्राय समझने की कोशिश करते हैं। उपर्युक्त पैरा में चार बिंदुओं पर बल दिया गया है-

1. विषय पर ही केन्द्रित रहना
2. विचारों को सुनियोजित रूप से व्यक्त करना
3. संक्षेप में लिखना
4. प्रभावी और सटीक अभिव्यक्ति

यद्यपि निबंध के प्रश्नपत्र की तैयारी के कुछ और भी महत्त्वपूर्ण बिन्दु हो सकते हैं, पर उपर्युक्त चार बिन्दु निश्चित तौर पर बेहद महत्त्वपूर्ण हैं-

1. **विषय पर ही केंद्रित रहना:** निबंध लेखन में बेहतर प्रदर्शन का मंत्र है- विषय की मूल भावना से स्वयं को जोड़े रखना। सम्पूर्ण निबंध का झुकाव निरंतर विषय की ओर बने रहना चाहिये और परीक्षक को ऐसा बिलकुल भी प्रतीत नहीं होना चाहिये कि आप विषय से भटक गए हैं। प्राय: निबंध के विषय बहुत सामान्य, पर अमूर्त किस्म के होते हैं। यदि किसी विषय विशेष के सभी पहलुओं (सकारात्मक व नकारात्मक) को कवर करते हुए विचारों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाए तो अच्छे अंक हासिल करना कोई कठिन कार्य नहीं है।
2. **विचारों को सुनियोजित रूप से व्यक्त करना:** दरअसल निबंध न केवल हमारी लेखन शैली का प्रतिबिंब है, बल्कि यह हमारे अब तक के अर्जित ज्ञान, अनुभव और चिंतन प्रक्रिया का भी निचोड़ प्रस्तुत करता है। अगर हमारे सोचने का ढंग अव्यवस्थित और उलझाऊ होगा तो इसका प्रभाव हमारे निबंध पर भी पड़ेगा।

   बहुत से अभ्यर्थी विचारों की दृष्टि से बहुत समृद्ध और अनुभवी होते हैं, पर निबंध लिखते समय उन विचारों को क्रमबद्ध, सुनियोजित व व्यवस्थित तरीके से अभिव्यक्त नहीं कर पाते। 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा' की प्रवृत्ति से बचने की कोशिश करें। विचारों को सुनियोजित ढंग से व्यक्त करने के लिये एक संक्षिप्त रूपरेखा बना लेना हमेशा बेहतर रहता है। इस रूपरेखा में आप विषय के विभिन्न संभावित पहलुओं के साथ-साथ कुछ प्रासंगिक उदाहरणों, उक्तियों व पंक्तियों को भी शामिल कर सकते हैं।
3. **संक्षेप में लिखना:** कम लिखें, पर प्रभावी लिखें। ध्यान रखें, 'अति' हर चीज़ की बुरी होती है, *'अति सर्वत्र वर्जयेत्'*। चूँकि अब तीन घंटे के निर्धारित समय में दो निबंध लिखने होते हैं, अत: निर्धारित शब्द-सीमा का उल्लंघन करने से बचें। पैराग्राफ में लिखें और बहुत लंबे पैराग्राफ न बनाएँ। संक्षेप में लिखना और 'कम शब्दों में अधिक कहना' एक कला है और यह निबंध लेखन में ही नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति के अन्य तरीकों, यथा-संवाद, भाषण, साक्षात्कार, परिचर्चा और व्याख्यान सभी में काम आती है।
4. **प्रभावी और सटीक अभिव्यक्ति:** अभिव्यक्ति एक अच्छे निबंध का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इस बिन्दु पर हम विस्तार से चर्चा करेंगे। दरअसल, उपर्युक्त तीनों बिन्दुओं को समझकर निबंध लिखते समय उनका समावेश करना निबंध को प्रभावी और सटीक बनाता है।

आयोग द्वारा निर्धारित इन चारों बिन्दुओं की कसौटी पर खरा उतरने के लिये अग्रलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है-

1. **प्रवाह:** निबंध लेखन का सबसे आकर्षक पक्ष है- निबंध का प्रवाह (Flow)। यदि निबंध में एक सहज प्रवाह होगा, तो परीक्षक की रुचि आरंभ से लेकर अंत तक निबंध में बनी रहेगी और यह निश्चित तौर पर अंकदायी होगा। पर प्रश्न यह है कि आखिर निबंध लिखते समय प्रवाह कैसे बनाए रखें? दरअसल निबंध विचारों का व्यवस्थित, सुनियोजित और क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण है, लिहाजा विचारों को व्यक्त करते समय उनके मध्य निहित अंतर्संबंध को पहचानने की कोशिश करें और सुनिश्चित करें कि यह अंतर्संबंध आपके निबंध में झलके।

   जब एक पैराग्राफ का अंत होता है, तो कोशिश करें कि अगले पैराग्राफ की शुरुआत पहले पैराग्राफ के अंत से जुड़ी हो, यानी दोनों में एक सहज संबंध होना चाहिये। परीक्षक को ऐसा नहीं लगना चाहिये कि आप कहीं से भी, कुछ भी, अव्यवस्थित ढंग से लिखे जा रहे हैं। निबंध में यह प्रवाह निरंतर अभ्यास से विकसित किया जा सकता है।
2. **संतुलित दृष्टिकोण / मध्यम मार्ग:** विचारधाराएँ और दृष्टिकोण सबके अलग-अलग हो सकते हैं, पर 'सत्य' इन सभी विचारधाराओं के बीच में कहीं निहित होता है। अत: दो विपरीत ध्रुवों पर जाने के बजाय एक संतुलित और व्यावहारिक

खंड–3

पिछले सात वर्षों में सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए निबंध

2019 में पूछे गए निबंध

1 विवेक सत्य को खोज निकालता है

सूर्य केंद्र में है या पृथ्वी? कौन किसका चक्कर लगाता है? शायद आज किसी व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा जाए, तो वह आसानी से इसका जवाब दे सकता है कि सूर्य केंद्र में है। लेकिन इस सत्य पर पहुँचने की राह वर्तमान में जितनी आसान दिखाई देती है, उतनी है नहीं। मध्यकाल तक इस तथ्य को लेकर संभवत: सर्वसम्मति रही होगी कि पृथ्वी केंद्र में है तथा सूर्य पृथ्वी के चक्कर लगाता है अथवा ऐसा हो सकता है कि जब चर्च या पादरियों ने बता ही दिया है कि पृथ्वी केंद्र में है, तो फिर हमने इस पर संदेह व्यक्त करने की हिम्मत नहीं जुटाई कि इस तथ्य की प्रामाणिकता की जाँच करें। लेकिन कुछ विवेकशील मनुष्यों को इस तथ्य की प्रामाणिकता पर संदेह आया होगा और उनके विवेक ने सत्य की खोज के लिये उन्हें प्रेरित किया होगा। अंतत: वे इस सत्य पर पहुँच ही गए कि 'पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य केंद्र में है तथा पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है।' परंतु कहा जाता है कि 'सत्य कड़वा होता है।' जब हमारे सामने सत्य आता है, तो उसे स्वीकारना आसान नहीं होता। मध्यकाल में चर्च की सत्ता को चुनौती देना कितना कठिन था, इस बात को हम अच्छी तरह जानते हैं। इसके बावजूद कॉपरनिकस, ब्रूनो व गैलीलियो जैसे वैज्ञानिकों ने अपने विवेक के बल पर यह खोज करने का प्रयत्न किया कि वास्तव में सत्य क्या है? और समाज के विपरीत अपने मत का प्रतिपादन किया। ब्रूनो को तो सत्य की खोज के लिये ज़िंदा जला दिया गया।

इसी क्रम में निबंध के शीर्षक के अनुरूप एक प्रचलित कहानी की भी चर्चा करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। एक बार एक राजा के दरबार में दो महिलाएँ आईं, जो किसी बच्चे को लेकर अपना-अपना दावा प्रस्तुत कर रही थीं। इस परिस्थिति में राजा के लिये न्याय करना मुश्किल हो गया। आधुनिक काल के समान उस समय डीएनए जैसी टेक्नोलॉजी भी नहीं थी, जिससे समस्या का उचित समाधान किया जा सके तथा न्याय हो सके। अत: राजा ने अपने विवेक का प्रयोग किया और सत्य को खोजने का प्रयत्न किया। राजा ने क्रोधित होकर कहा कि इस बच्चे के तलवार से दो हिस्से कर दिये जाएँ एवं दोनों महिलाओं को एक-एक हिस्सा दे दिया जाए। राजा के इतना कहने पर उनमें से एक महिला ने तुरंत कहा- "महाराज, आप बच्चे को इस महिला को दे दीजिये।" उस महिला के मुख से ऐसी बात सुनकर राजा समझ गया कि बच्चा किसका है और न्याय सामने आ गया।

उपर्युक्त संदर्भों के आधार पर प्रथम दृष्टया तो यही प्रतीत होता है कि विवेक सत्य को खोज निकालता है। यद्यपि इसका सूक्ष्म विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। इससे पूर्व, सर्वप्रथम यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि ज्ञान (Knowledge) और विवेक (Wisdom) दोनों समानार्थी हैं या इनमें अंतर भी विद्यमान है। वस्तुत: वैसे तो सामान्यत: लोग ज्ञान और विवेक को समानार्थी ही मानते हैं। परंतु दोनों में मौलिक असमानता है। ब्रिटिश निबंधकार, दार्शनिक और इतिहासकार 'बर्ट्रेंड रसेल' अपने निबंध 'Knowledge and Wisdom'

में इनके मध्य अंतर की विस्तृत चर्चा करते हैं। रसेल Knowledge अर्थात् 'ज्ञान' को डाटा या सूचनाओं के संग्रहण अथवा किसी वस्तु के बारे में प्राप्त जानकारी के रूप में परिभाषित करते हैं। जबकि उनके अनुसार, Wisdom अर्थात् 'विवेक' अपने अनुभवों व परिश्रम से इन सूचनाओं का व्यावहारिक अनुप्रयोग करने से संबंधित है। विशेष बात यह भी है कि इस व्यावहारिक अनुप्रयोग में नैतिक मूल्य अनिवार्यत: शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त विवेक में बुद्धि पक्ष के साथ-साथ भावनाओं का भी संतुलित सामंजस्य होता है। स्पष्ट है कि विवेक, ज्ञान से उच्चतम है। विवेक के अभाव में ज्ञान हानिकारक हो सकता है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से भलीभाँति समझ सकते हैं- किसी व्यक्ति को परमाणुओं और अणुओं का ज्ञान है, किंतु अगर उसमें विवेक नहीं है, तो हो सकता है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग मानवीय सभ्यता के विकास में न करके परमाणु हथियारों का निर्माण करके मानव के विध्वंस में करे। दूसरी तरफ, अगर व्यक्ति में ज्ञान है, और विवेक भी है, तो वह अपने ज्ञान का उपयोग करके नए-नए आविष्कार करने के लिये प्रयत्नशील रहेगा। साथ ही इन आविष्कारों का प्रयोग मानवीय सभ्यता के विरुद्ध न कर उसकी भलाई व प्रगति में करेगा।

इसीलिये प्राचीनकाल से ही भारतीय एवं पश्चिमी दोनों परंपराओं में मनुष्य में 'विवेक-सद्गुण' के विकास पर अत्यधिक बल दिया जाता है, फिर चाहे वह 'ओल्ड टेस्टामेंट' हो अथवा भारतीय धर्मग्रंथ। ग्रीक नीतिशास्त्र में सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तू तीनों ने नैतिकता के लिये सद्गुणों के विकास को महत्त्व दिया है। प्लेटो की पुस्तक 'द रिपब्लिक' में वर्णित 'दार्शनिक राजा' विवेक व ज्ञान से युक्त है। वहीं 'अरस्तू' ने बौद्धिक सद्गुण में 'विवेक' को प्रमुख माना है, जो सुकरात के ज्ञान-सद्गुण के नज़दीक है। इसी संदर्भ में सुकरात का प्रसिद्ध कथन भी है- "An unexamined life is not worth living."

अब सवाल यह उठता है कि विवेक, सत्य को कैसे खोज निकालता है? सत्य की खोज के लिये क्या विवेक ही रास्ता उपलब्ध कराता है? उल्लेखनीय है कि विवेक अनुभव, ज्ञान, नैतिकता से संपृक्त होने के कारण निर्णय की गुणवत्ता को बढ़ा देता है। विवेकशील मनुष्य दूसरों की बातों या अन्य व्यक्तियों के द्वारा बनाए हुए रास्ते का अंधानुकरण नहीं करता है बल्कि अपनी तार्किकता व स्वतंत्र चिंतन से उसे टटोलने का प्रयत्न करता है। जब उसका विवेक इस बात को स्वीकार कर लेता है कि उपर्युक्त बात में सटीकता है, तभी उस बात को स्वीकार करता है या उस रास्ते पर चलता है।

उदाहरणस्वरूप, 'नवजागरण' के दौर में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले इत्यादि समाज-सुधारक अपने विवेक से इस सत्य पर पहुँचे कि सती प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जैसी समस्याएँ भारतीय समाज का सार्वकालिक सत्य नहीं हैं। और न ही ये रूढ़िवादी परंपराएँ अन्यत्र समाज में मौजूद हैं। अत: भारतीय समाज में व्याप्त इन रूढ़िगत प्रथाओं को दूर करने का इन्होंने आह्वान किया। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन 'श्वेत नस्ल भार का सिद्धांत' के तहत भारतीयों पर अपने शासन को वैध बताता रहा। यद्यपि भारतीय बुद्धिजीवियों के विवेक ने इस 'मत' या असत्य को सिरे से नकार दिया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस सिद्धांत के माध्यम से सत्य को विकृत करके भारतीयों का अत्यधिक शोषण किया जा रहा है तथा उनके धन को लूटकर ब्रिटेन पहुँचाया जा रहा है।

विचारणीय है कि विवेक व्यक्ति के संदेह को दूर करता है। जब तक व्यक्ति में संदेह व्याप्त रहेगा, वह सत्य तक नहीं पहुँच सकता। जिस कारण से व्यक्ति में संदेहात्मक मनोवृत्ति विकसित हो रही है, विवेक उसकी जड़ तक पहुँचकर उसे समाप्त कर देता है। हालाँकि, इससे सहमत हुआ जा सकता है कि पूर्व में जिन बातों को लेकर धारणा थी कि उपर्युक्त मत पूर्णत: सत्य है; अगर लोगों के मन में उस तथ्य की सटीकता को लेकर संदेह उत्पन्न नहीं होता, तो असत्य से सत्य की दिशा में हम पहला कदम नहीं बढ़ाते। लेकिन यह भी सत्य है कि अगर व्यक्ति संदेह में ही रहेगा तो अपने विवेक से अर्थात् सत्य-असत्य, नैतिक-अनैतिक और अन्य प्रतिमानों के आधार पर दूर करने का प्रयत्न नहीं करेगा, तो यह असंभव है कि वह सत्य तक पहुँच पाए। उदाहरणार्थ, 'न्यूटन' जब पेड़ के नीचे बैठे हुए थे, तो सेब के गिरने से उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ। लेकिन सेब गिरने के कारणों का उन्होंने अवलोकन किया, न कि संदेह में ही जीवन गुज़ार दिया। विवेक के बल पर इस घटना के सत्य तक पहुँचने का प्रयास किया, तथा सेब गिरने का कारण पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बताया। इस प्रकार न्यूटन ने विवेक के माध्यम से सत्य को खोज निकाला।

खंड–4

अमूर्त विषयों पर आधारित निबंध

1 अच्छा–बुरा स्वयं में कुछ नहीं, हमारे विचार ही हमें अच्छा–बुरा बनाते हैं।

UPSC 2003

संत कवि तुलसीदास ने लिखा है–

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

यानी जैसी जिसकी सोच होगी वैसा ही वह अपने प्रभु में देखेगा। एक भला आदमी अपने आराध्य में अच्छे गुण तलाशेगा और उनकी पूजा करेगा। इसके विपरीत एक बुरा आदमी अपने मुताबिक गुण अपने प्रभु में देखना पसंद करेगा। कुछ वैसा ही जैसे शरद के पूर्व जब आसमान में बादल तमाम तरह की आकृतियाँ बनाते-बिगाड़ते हैं, तब मनुष्य इन बादलों में अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप आकार देखता है। अच्छा या बुरा होना तो मनुष्य की मानसिकता है। एक अच्छा शोध भी अगर ग़लत हाथों में पड़ जाए तो वह उससे विनाश की ही बात सोचेगा और अच्छे हाथों में पड़ जाए तो वह उसका सकारात्मक और रचनात्मक इस्तेमाल करेगा। परमाणु ऊर्जा मनुष्य जाति के लिये जितनी खतरनाक है उतनी ही उपयोगी भी। अब यह इसके उपयोग करने के रूप पर निर्भर करता है। यदि इसका उपयोग परमाणु बम निर्माण में करें तो यह विध्वंसक परिणाम दे सकती है वहीं यदि इसे विद्युत ऊर्जा निर्माण में प्रयुक्त किया जाए तो ऊर्जा संकट का समाधान सिद्ध हो सकती है।

हिंसक वृत्ति का आदमी अपनी वृत्ति का त्याग नहीं कर पाता और अपने स्वभाव के अनुरूप वह हर आविष्कार में यही ढूंढता है। इसीलिये महात्मा गांधी ने स्वाधीनता की लड़ाई लड़ते वक्त अहिंसा पर ज़ोर दिया था। अहिंसा का मतलब सिर्फ जीव के प्रति दया नहीं बल्कि अपने बुरे स्वभाव पर भी काबू पाना है। इसे यूँ कहा जा सकता है कि हिंसा का अभाव ही अहिंसा है। किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है और यह अहिंसा तब ही आएगी जब मनुष्य के स्वभाव में ही हिंसा का अभाव होगा। सवाल यह है कि हिंसा का भाव मनुष्य के मन में आता ही क्यों है? हिंसा का मूल स्रोत है– राग-द्वेष और मनुष्य की अनियंत्रित वासनाएँ। वासना यानी कि जगत और प्रकृति से अपरिमित सुख पाने की लालसा और इस चक्कर में वह प्रकृति का दोहन करता है और जगत की हर चीज़ पर नियंत्रण पाना चाहता है। इस वजह से उसके अंदर दूसरों से छीनने और हरण की ललक बढ़ती है। पशु की वासनाएँ सीमित हैं। वह बस आहार, निद्रा और काम तक सीमित है इसलिये उसकी वासनाएँ बस प्राकृतिक हैं और उसकी मांग भी।

हालाँकि एक बार अगर मनुष्य सहज जीवन या अच्छे विचारों वाला जीवन अपना ले तो उसे फिर कभी बुरे मार्ग पर चलने का प्रयास नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि बुरे मार्ग पर चलने के लिये निरंतर बुरा सोचना पड़ता है जबकि अच्छे और सहज विचारों के मार्ग पर चलने के लिये सायास उपाय नहीं करने पड़ते। लेकिन स्वभाव की इस वृत्ति पर नियंत्रण पाना आसान नहीं। पहले तो मनुष्य को अच्छे गुणों के लिये प्रयास करना पड़ेगा और एक बार आपके अंदर ये गुण आ गए तो फिर कभी उस मार्ग पर जाने की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होगी। लेकिन इस अच्छे मार्ग पर चलने के लिये साहस ज़रूर चाहिये और वह साहस है अंतर्मन का। जिसमें निरंतर अच्छे और बुरे विचारों के बीच द्वंद्व में अच्छे की ओर अपनी प्रवृत्ति बढ़ानी होगी। तब हर शोध और हर आविष्कार के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हो जाएगा और विचार रचनात्मक।

अच्छा या बुरा समझ का फर्क है। वही चीज़ अच्छी हो सकती है और बुरी भी। बस श्रेणी का फर्क होगा। एक समाज के लिये जो बुरा है दूसरा समाज उसे अच्छा समझता है। मालिक के लिये कर्मचारी कामचोर है और कर्मचारी के लिये मालिक पैसाखोर। काम बराबर हो रहा है मगर समझ अलग-अलग। इसे यूँ समझा जा सकता है कि वही जीवनरक्षक दवा जो बीमारी विशेष में अमृत है अगर स्वस्थ व्यक्ति ले ले तो उसके लिये वह मृत्यु का कारण बन सकती है। पानी का अतिरेक तबाही का कारण बनता है और अगर पानी नहीं बरसे तो भी। कुछ लोग इसे अति के अतिरेक से जोड़ते हैं और मानकर चलते हैं कि *'अति सर्वत्र वर्जयेत।'* मगर अति तो दूर एक ही वस्तु के बारे में अलग-अलग नज़रिया हो सकता है। उत्पादन के साधन जिसके अधीन होते हैं उसके लिये मुद्रास्फीति मुनाफा कमाने का साधन है और जो उत्पादक शक्तियाँ हैं, पर उत्पादन के साधन उनके पास नहीं हैं उनके लिये मुद्रास्फीति महंगाई डायन बनकर आती है। तब अच्छा या बुरा बस नज़रिये का ही अंतर है। एक दृष्टि से जो अच्छा है दूसरी दृष्टि से वह बुरा। लेकिन आमतौर पर मानव समाज इसे समझता नहीं और व्यर्थ की बहस कर अपना समय और शक्ति ज़ाया करता है। कई बार समय भी अच्छा या बुरा तय करता है।

राजनीति में ही देखिये, यही राष्ट्रीयकरण एक समय में इतना पसंद किया जाता था कि इंदिरा गांधी ने एकदम से सारे बैंकों का सरकारीकरण कर दिया था और एक समय वह आया जब सरकारीकरण को अभिशाप माना जाने लगा और सरकारी तथा सरकार की देखरेख में चल रहे अर्द्धसरकारी सार्वजनिक उपक्रमों को भी निजी हाथों में बेचा जाने लगा। यहाँ तक कि हवाई सेवाओं का भी निजीकरण कर दिया गया और अब रेलवे को भी टुकड़ों-टुकड़ों में निजी क्षेत्र में देने की तैयारी चल रही है। सरकार की प्रकृति वही है, लोकतंत्र वही है पर वरीयताएँ बदल रही हैं तथा उनके गुण-दोष भी। दरअसल अच्छे या बुरे की अवधारणा आदमी के दिमाग में होती है और वह हर चीज़ को अपने दृष्टिकोण से देखता है। जिसका दृष्टिकोण सकारात्मक होगा उसे वही चीज़ सकारात्मक और ऊर्जावान लगेगी जो अगले आदमी को नकारात्मक लग सकती है। आप कोई भी लेख अथवा रिपोर्ट लिखें हर व्यक्ति उसे अलग-अलग नज़रिये से देखेगा और उस पर अपनी प्रतिक्रिया देगा। अपराध से जुड़ी हर खबर को पुलिस का आदमी गलत बताएगा तो जनता उसे सही। कोई कितना भी पीड़ित क्यों न हो थाने में रिपोर्ट लिखने वाला सिपाही उस पर कतरब्योंत करेगा ही। अब ऐसा नहीं कि पुलिस वाला गड़बड़ ही होगा और पीड़ित झूठ ही बोल रहा होगा। दरअसल पीड़ित चाहे कितना सच बोले पुलिस की ट्रेनिंग ही इस तरह हुई है कि वह उसे सिरे से खारिज करेगा और पीड़ित पर ही शक करेगा। ऐसा कहा जाता है कि पुलिस की नज़र में हर आदमी अपराधी है और एक सज्जन व्यक्ति की नज़र में अपराधी भी इंसान। दोनों के सोचने के नज़रिये अलग जो होते हैं। एक अपराधी भी इंसान होता है। उसके अंदर भी वे सारे सद्‌गुण होते हैं जिनसे कोई व्यक्ति महान बनता है और एक सज्जन आदमी के अंदर भी कई अवगुण होते हैं।

बस देखना यह है कि उसके अंदर के कौन-से गुण किन गुणों पर हावी हो गए अगर अवगुण हावी हो गए तो कोई भी आदमी बुरा बन सकता है और इसकी विपरीत स्थिति में वह महान बन सकता है। गांधी जी ने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक बार उन्होंने अपने पिता का कुछ सोना चुराया था लेकिन इसके बाद उनके मन में इतना प्रायश्चित हुआ कि उन्होंने पिता से माफी मांगने की ठानी। पिता से रूबरू होकर कहने की हिम्मत नहीं पड़ी तो उन्होंने लिखकर माफी मांगी। पिता ने माफ कर दिया और इसका इतना अधिक असर उन पर पड़ा कि उन्होंने सदा-सदा के लिये चोरी नहीं करने और झूठ न बोलने की कसम खा ली। यही आदमी की प्रवृत्ति है। अगर वह साहस दिखाकर अपने अवगुणों को दबा लेता है तो उसे आदर्श बनने से रोका नहीं जा सकता।

इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि अच्छा या बुरा मानव स्वभाव है। यह अपने आप में कोई विशेषण नहीं है। एक ही चीज़ किसी की नज़र में अच्छी और दूसरे की नज़र में बुरी होती है। इसलिये किसी उत्पाद या वस्तु अथवा विचार को हम अच्छा या बुरा नहीं कह सकते। अच्छा या बुरा उसे धारण करने वाले के मन में होता है। एक व्यक्ति पत्थर में मूरत देखता है तो दूसरा उसे पत्थर मानता है। एक ऊर्जा के ज़रिये विद्युत निर्माण करता है तो दूसरा परमाणु बम बनाकर विध्वंस की तैयारी करता है। इसलिये सिर्फ उत्पाद देखकर उसे अच्छा या बुरा बता देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। ■■■

खंड–5

राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों पर आधारित निबंध

1 अफ्स्पाः औचित्य एवं व्यवहार्यता।

"जनरल तुम्हारा टैंक एक मज़बूत वाहन है
वह नष्ट कर डालता है वन को
और रौंद डालता है सैकड़ों आदमियों को
लेकिन उसमें एक खराबी है
इसके लिये एक चालक चाहिये
× × × × ×
जनरल आदमी कितना उपयोगी है
वह उड़ सकता है और मार सकता है
लेकिन उसमें एक खराबी है
वह सोच सकता है"

यही सोच है जिसके कारण सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (अफ्स्पा) का नाम सुनते ही नाक में पाईप लगे घुंघराले बालों वाली एक लड़की की छवि उभरती है जिसने लगभग 16 साल तक इस कानून को हटाने के लिये अनशन किया। यही वजह है कि अफ्स्पा का ज़िक्र आते ही हाथ में पत्थर लिये कश्मीरी युवकों का दृश्य उभरता है जो भारतीय फौजों को वहाँ से हटाने की मांग करते हैं। तो क्या अफ्स्पा कानून सच में इतना बुरा है कि इसे जहाँ भी लागू किया जाता है वहाँ इसका विरोध शुरू हो जाता है? विरोध के बावजूद भी भारत सरकार की आखिर ऐसी क्या मजबूरी रही है कि जब से यह कानून बना है तब से उत्तर-पूर्व समेत देश के किसी-न-किसी हिस्से में यह विद्यमान ज़रूर रहा है। क्या भारत की एकता और अखंडता सैनिकों को विशेषाधिकार प्रदान कर ही कायम रखी जा सकती है? क्या मानवाधिकार को कुचलकर क्षेत्रीय एकता बरकरार रखने की चाहत एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिये जायज़ हो सकता है? आखिर उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में कुछ लोगों की सोच इतनी विपरीत क्यों है कि वो सुरक्षा बलों पर ईंट-पत्थरों की बारिश करते रहते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर ही अफ्स्पा कानून के औचित्य एवं व्यवहार्यता को सिद्ध करेगा।

अफ्स्पा यानी 'आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर एक्ट' एक फौजी कानून है जिसे 'डिस्टर्ब्ड' क्षेत्रों में लागू किया जाता है। यह कानून सुरक्षाबलों और सेना को कुछ विशेषाधिकार देता है, जो आमतौर पर सिविल कानूनों में वैध नहीं माने जाते हैं। सबसे पहले ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ो आंदोलन को कुचलने के लिये अफ्स्पा को 1942 में अध्यादेश के रूप में पारित किया था। आगे भारत में संविधान की बहाली के बाद से ही पूर्वोत्तर राज्यों में बढ़ रहे अलगाववाद, हिंसा और विदेशी आक्रमणों से प्रतिरक्षा के लिये नागालैंड, मणिपुर, असम में वर्ष 1958 में अफ्स्पा लागू किया गया। वर्ष 1972 में कुछ संशोधनों के साथ इसे लगभग सारे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में लागू कर दिया गया और नब्बे के दशक में पंजाब और कश्मीर में भी राष्ट्रविरोधी तत्त्वों को नष्ट करने के लिये अफ्स्पा के तहत सेना को विशेष अधिकार प्रदान किये गए। कहने का तात्पर्य यह कि अफ्स्पा सुरक्षा बलों को प्राप्त कुछ विशेष अधिकार हैं जिसके द्वारा वह अशांत व उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में शांति बहाली का काम करता है। अत: प्रश्न उठता है कि वह विशेषाधिकार है क्या?

जिस क्षेत्र में यह कानून लागू किया जाता है वहाँ सुरक्षा बलों को यह अधिकार होता है कि वे ज़रूरी होने पर कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु चेतावनी देने के साथ गोलीबारी भी कर सकते हैं। भले ही इस घटनाक्रम में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए किंतु दोषी सैनिक को केंद्र सरकार की अनुमति के बिना जाँच के दायरे में नहीं लाया जा सकता है। यह विशेषाधिकार नहीं तो और क्या है कि

किसी की जान लेने पर भी कारण बताने की वैधता सेना या अर्द्धसैनिक बलों को नहीं है। दरअसल अफ्स्पा के तहत बिना वारंट के गिरफ्तारी करने, शस्त्रों को बरामद करने, उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में ऐसे शरण स्थलों व शिविरों जहाँ से हिंसक गतिविधियों को अंजाम दिये जाने का अंदेशा हो, उन्हें नष्ट करने का अधिकार सशस्त्र बलों को दिया गया है। जो कानून उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में बिना वारंट लोगों के घरों में प्रवेश और छानबीन करने के अधिकार को मान्यता देती है, विस्फोटकों, हथियारों आदि को छिपाकर रखने के अंदेशे पर अर्द्ध-सैनिक बलों को कठोर कानूनी कार्यवाही करने की शक्ति देती है, उसे विशेषाधिकार नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे?

यद्यपि अफ्स्पा के तहत गिरफ्तार किये गए किसी भी पुरुष अथवा महिला को थाने में मुख्य पुलिस अधिकारी के समक्ष पेश करने का प्रावधान है, किंतु इसमें समय निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि सुरक्षा बल इसे कब पुलिस को सौपेंगे। कानून की धारा-6 ऐसे सुरक्षा अधिकारियों को किसी भी कानूनी कार्यवाही, मुकदमा आदि से सुरक्षा प्रदान करती है, जिसके चलते पुलिस अधिकारी निरंकुश व मनमाने ढंग से बर्बर व्यवहार करते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो अफ्स्पा कानून के तहत सुरक्षाबलों को प्राप्त अधिकार इतने विशिष्ट हैं कि प्रथम दृष्टया यह मानवाधिकार तथा नागरिकों के मूल अधिकारों के विपरीत दिखाई पड़ता है। इन तथ्यों के आधार पर तो अफ्स्पा कानून कहीं से भी औचित्यपूर्ण नज़र नहीं आता है, अत: इसकी आलोचना की जाती है।

अफ्स्पा की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह देश के संघीय ढाँचे पर चोट करता है। ऐसा इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह राज्यों के शांति, सुरक्षा, कानून एवं व्यवस्था प्रबंधन के अधिकारों का हनन करता है। संविधान के विशेषज्ञों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं का मानना है कि अफ्स्पा जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्वी राज्यों के निवासियों के मानवाधिकारों के उल्लंघन का लाइसेंस है, केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाला अभिकरण है और राज्यों के अधिकार क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप है। सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम के तहत राज्यों में सशस्त्र बलों की तैनाती को एकात्मक शासन का अभिलक्षण माना जाता है। ऐसा भी देखा गया है कि सशस्त्र बलों के कर्मचारियों ने उत्तर-पूर्वी राज्यों व अन्य जगहों में महिलाओं व बच्चों पर अनेक अत्याचार किये हैं। महिलाओं को बलात्कार का दंश झेलना पड़ा है। अफ्स्पा के संरक्षणात्मक प्रावधानों के चलते अधिकारियों में किसी तरह का भय नहीं होता और कानून का संरक्षण पाकर वे आशंका अथवा संदेह के आधार पर लोगों के अधिकारों की परवाह किये बिना बर्बर एवं अमानवीय कार्रवाई करते हैं।

यह सच है कि अफ्स्पा के कई प्रावधान संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकार के अनुच्छेद 21, 22 का प्रत्यक्ष उल्लंघन है। केन्द्र सरकार को राज्य के हित में ऐसा कोई कानून बनाने का अधिकार नहीं है, जो नागरिकों के जीने का अधिकार भी छीन ले। प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के तहत विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी भी तरह लोगों को व्यक्तिगत आज़ादी तथा जीने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है, किंतु जिन क्षेत्रों में अफ्स्पा लागू है वहाँ अधिकारों का यह उल्लंघन प्राय: देखने को मिलता है। अत: मानवाधिकार संगठन, अलगाववादी और कुछ राजनीतिक दल इसे एक काला कानून मानते हैं। जीवन रेड्डी कमेटी (2005), जस्टिस वर्मा कमेटी (2013) तथा एमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी रिपोर्टों में सेना और सुरक्षाबलों पर काफी गंभीर आरोप लगाए हैं। तो क्या इस आधार पर यह माना जा सकता है कि अफ्स्पा एक जनविरोधी औपनिवेशिक कानून है जिसे हटाया जाना निहायत ज़रूरी है? शायद यह कहना अभी जल्दबाजी होगी।

सर्वप्रथम हमें यह समझना होगा कि अफ्स्पा जैसे सख्त कानून की आवश्यकता अपने नागरिकों पर जुल्म ढाने के लिये नहीं बल्कि राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिये है। एक राष्ट्र के जीवन में कई बार ऐसा होता है जब कोई क्षेत्र विशेष उपद्रवग्रस्त हो जाता है अथवा सरकार से नाराज़ रहते हुए अलगाववादी रुख अख्तियार कर लेता है। समूह विशेष के अड़ियल रुख के कारण जब संवाद की सारी संभावनाएँ क्षीण हो जाती हैं तब ऐसी परिस्थिति में सरकारी मशीनरी के पास सैन्य बल के अलावा और कोई चारा नहीं होता। वरना यदि अपनी छोटी-छोटी मांगों पर क्षेत्र विशेष आज़ाद होने लगें तो देश का क्या अस्तित्व रह जाएगा? दूसरी बात यह कि उस माहौल की कल्पना कीजिये जिसमें हमारे सुरक्षाबल काम करते हैं। किधर से गोली चलेगी, किधर से पत्थर ये पता नहीं होता। हमेशा उनकी जान पर खतरा मंडराता रहता है। खासकर उन क्षेत्रों में जो विदेशी सीमाओं से लगे हैं तथा जहाँ विदेशी संरक्षण प्राप्त उग्रवाद पनपता है, वहाँ बिना विशेष अधिकार के सेनाएँ अपने काम को बहुत हद तक सफलता से अंजाम नहीं दे सकती है। अफ्स्पा जैसे कानून सुरक्षा बलों को सशक्त करते हैं। देखा गया है कि इसकी वजह से नागालैंड, पंजाब और कश्मीर में शांति बहाली में बहुत हद तक सफलता भी मिली है। यानी अफ्स्पा जैसे कानून की वैधता इसलिये है क्योंकि यह देश के विभाजन को रोकता है। साथ ही, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह कानून हवा में नहीं बना है बल्कि संवैधानिक उपबंधों के अंतर्गत ही व्युत्पन्न हुआ है।

ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि जिन क्षेत्रों में इस कानून को लागू किया गया है वहाँ अलगाववाद आज़ादी की मांग की हद तक व्याप्त रही है, जबकि भारतीय संविधान के अनुसार किसी भी राज्य को संघ से अलग होने की इज़ाज़त नहीं है। समूचा उत्तर-पूर्व बहुत दिनों तक भारतीय संघ में प्रवेश का विरोध करता रहा। साथ ही कश्मीर में भी पर्याप्त स्वायत्तता के बावजूद भारतीय

खंड–6

आर्थिक विषयों पर आधारित निबंध

1 क्या राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देगी?

ज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में बौद्धिक संपदा और उससे जुड़े अधिकार बहुमूल्य कमोडिटीज़ बन गए हैं और इसीलिये वैश्विक स्तर पर उनके संरक्षण का जमकर प्रयास किया जा रहा है। वैश्वीकरण के कारण पिछले दो दशकों में विश्व भर में सीमापार लेन-देनों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियाँ दुनिया भर में विभिन्न स्थानों पर अपनी वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार कर रही हैं, लेकिन समस्या यह है कि वर्तमान में विश्व के विभिन्न देशों में बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा से जुड़े कानूनों को लेकर मत-भिन्नता है। ऐसी स्थिति में, वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था में बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बन गई है। आज जहाँ विश्व की सभी विकसित अर्थव्यवस्थाएँ बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित कानूनों के निर्माण की ज़ोरदार ढंग से पैरवी करती हैं, वहीं विश्व व्यापार संगठन भी अपने सदस्य देशों से 'ट्रिप्स' समझौते के अनुसार बौद्धिक संपदा अधिकारों के कानूनी संरक्षण और प्रवर्तन के लिये न्यूनतम मानकों को स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देता है।

ऐसे वैश्विक परिदृश्य में भारत ने मई 2016 में अपनी 'राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति' की घोषणा कर बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण की मांग करती अर्थव्यवस्थाओं के साथ सहयोग और समायोजन की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया है। भारत सरकार का कहना है कि नई बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारत में रचनात्मक और अभिनव ऊर्जा के भण्डार को प्रोत्साहन देने, शोध और विकास को बढ़ावा तथा 'मेक इन इंडिया', 'स्टार्ट अप इंडिया' और 'डिजिटल इंडिया' जैसी योजनाओं को मज़बूती प्रदान करने के उद्देश्य से लाई गई है। साथ ही, इस नीति से भारत को 'ट्रांस-पैसिफिक पार्टनरशिप' जैसे बड़े क्षेत्रीय व्यापार समझौतों तथा विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं से संबंध स्थापित करने में आ रही चुनौतियों को हल करने में भी मदद मिलेगी। प्रश्न यह है कि क्या सरकार का दावा महज़ एक अंदाज़ा ही है या सचमुच यह नीति अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक होगी? एक प्रश्न यह भी बनता है कि आखिर वे कौन-सी स्थितियाँ थीं जिससे भारत सरकार को नई राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति की घोषणा करनी पड़ी? इन प्रश्नों का जवाब पाने के लिये हमें नीति संबंधी एक वृहद् विश्लेषण करना होगा।

सरकार का कहना है कि राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति 'रचनात्मक भारत: अभिनव भारत' के लिये कार्य करेगी। बौद्धिक संपदा अधिकारों के क्षेत्र में समय-समय पर आने वाले बदलावों के मद्देनज़र प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद इस नीति की समीक्षा की जाएगी। यह नीति भारतीय सिनेमेटोग्राफ अधिनियम सहित विभिन्न बौद्धिक संपदा अधिकार संबंधी कानूनों को अद्यतन करेगी तथा उनमें मौजूद विसंगतियों और असंगतताओं को दूर करेगी। इस नीति में बौद्धिक संपदाधारक किंतु कम सशक्त समूहों, जैसे- बुनकरों, किसानों और कारीगरों को वित्तीय सहायता देने के लिये ग्रामीण बैंकों या सहकारी बैंकों जैसी वित्तीय संस्थाओं द्वारा बौद्धिक संपदा के अनुकूल ऋण प्रदान किये जाने का भी उल्लेख है। नई नीति के अनुसार, मार्च 2017 तक ट्रेडमार्क की जाँच और रजिस्ट्रेशन प्रक्रिया की समयावधि को वर्तमान के 8 माह से घटाकर एक माह तक करने का प्रयास किया जाएगा। इस कार्य के लिये सरकार 100 नए परीक्षकों की नियुक्ति कर चुकी है। इससे भारत के चारों पेटेंट कार्यालयों में लंबित 2ए37000 आवेदनों के निपटारे में मदद मिलेगी। इस नीति द्वारा सरकार का प्रयास बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघनों को रोककर बौद्धिक संपदा

खंड–7

पारिस्थितिकीय व भौगोलिक विषयों पर आधारित निबंध

1

क्या सृष्टि का विनाश लगातार बढ़ते प्रदूषण के कारण होगा?

"धरती को
माँ समझना
बस, माँ समझना ही है
उर्वरता को महसूस करना ही है
अपने को तलाशना भर ही है।"

भारत और अन्य प्राचीन सभ्यताओं में पृथ्वी को माँ समझा जाता था, उर्वरता एवं हरे-भरे वन के लिये मातृ-पूजात्मक विधान होते थे। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करके मानव अपने को सुरक्षित समझता था, अपना वजूद तलाशता था, इसलिये धरती, जल, वन, पशुओं के प्रति एक संरक्षणकारी भावना हावी रहती थी। भारत की अनेक परंपराएँ एवं संस्कार इसी प्राकृतिक संरक्षण पर आधारित थे। वैदिक साहित्य में ही ऐसे कई आह्वान दिख जाते हैं- *'ॐ यन्तु नद्यो वर्षन्तु पर्जन्या, सुपिप्पला औषधयो भवन्तु।'* पृथ्वी पर जीवन, जल, कार्बन तथा ऊष्मा के एक खास संतुलन के कारण संभव हुआ। इसमें कोई भी संतुलन गड़बड़ाने से जीवन पर खतरा हो जाएगा। इन तीनों के संतुलन के अतिरिक्त मिट्टी एवं वायु भी जीवन के लिये अपरिहार्य चीज़ें हैं। इसलिये हर धर्म, समुदाय, परंपरा में प्रकृति के संरक्षण की चेतना मौजूद थी, हालाँकि इस चेतना का संबंध इस बात से था कि प्रकृति का यह साहचर्य, यह उत्पादन, उसकी यह देन मानव के लिये बराबर सुलभ रहे। पृथ्वी का अंधाधुंध दोहन इस कदर होगा कि जीवन पर ही संकट बन आएगा; यह बात ही तब कल्पनातीत थी। पर औद्योगिक मानव के उत्पन्न होने के बाद जब मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण करना प्रारंभ किया और प्रकृति को अपना नियंता समझने के बजाय उसको अपना दास समझने लगा तब उसकी जीवनशैली ने हवा, पानी, मिट्टी तथा जीवन के प्रत्येक पहलू को दूषित कर दिया, इस हद तक कि जीवन के विनाश का संकट उत्पन्न हो गया है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आधुनिक सभ्यता की संभावित विडंबनाओं से परिचित थे इसलिये उन्होंने कहा था *"प्रकृति हमारी ज़रूरतों को पूरा कर सकती है, लालचों को नहीं।"* उनके समकालीन महान उर्दू शायर अल्लामा इकबाल ने भी लिखा था-

"जिसने सूरज की शुआओं को गिरफ्तार किया
ज़िंदगी की रबे तारीख सहर कर न सके।"

(जिन्होंने सूरज की किरणों को बंदी बना लिया है, वे जीवन की अंधेरी रात को सवेरा नहीं दे पा रहे हैं।)

गांधी जी की तरह इकबाल भी पश्चिमी सभ्यता को भयावह रूप से आत्मघाती मानते थे। उनका इशारा भौतिक दुष्परिणामों के साथ नैतिक दुष्परिणामों की तरफ भी था। उनका मानना था कि इंसानी हवस का यह खतरनाक तरीका धरती को ही खा जाएगा। वे गांधी जी के 'हिंद स्वराज' (1909) के आने के पहले ही 1907 में अपनी एक चर्चित गज़ल में पश्चिम की इस प्रवृत्ति के बारे में दो टूक ढंग से सावधान करते हैं-

"तुम्हारी तहज़ीब अपने खंज़र से आप ही खुदकुशी करेगी।
जो शाख-ए-नाज़ुक पे आशियाना बनेगा नापाएदार होगा।"

वस्तुत: प्रदूषण एक समस्या के रूप में तब शुरू हुआ जब भाप के इंजन के प्रयोग के पश्चात् पहली औद्योगिक क्रांति ने जन्म लिया। धीरे-धीरे दूसरी औद्योगिक क्रांति तक आते-आते पूरी दुनिया में व्यापक उत्पादन प्रणाली का ज़ोर हो गया। दुनिया की

खंड–8

अंतर्राष्ट्रीय व वैश्विक विषयों पर आधारित निबंध

1 एक आदर्श विश्व–व्यवस्था की मेरी कल्पना।

UPSC 2001

एक आदर्श विश्व-व्यवस्था की कल्पना में अनेक विचार प्रस्तुत होते रहे हैं। भारतीय मनीषियों का 'वसुधैव कुटुंबकम्' व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', प्लेटो के रिपब्लिक का 'आइडियल स्टेट', थॉमस मोर का 'यूटोपिया' तथा मार्क्स-एंजिल्स-लेनिन का 'साम्यवादी-समाजवादी विश्व' का सपना आदि इसी कड़ी में उर्वरित होने वाले विचार हैं। इस संदर्भ में कल्पना के घोड़े आज भी दौड़ाए जा रहे हैं किंतु आदर्श विश्व-व्यवस्था की कामना अधूरी ही है। अतः प्रश्न उठता है कि आदर्शवादी कल्पना में विश्व-व्यवस्था की कैसी रूपरेखा हो जो महज़ स्वप्न नहीं बल्कि लागू किये जाने योग्य हो? इस हेतु सर्वप्रथम 'आदर्श' और 'कल्पना' के सह-संबंधों को जानना ज़रूरी है।

दरअसल, आदर्श एक श्रेष्ठतम अवस्था का द्योतक है। यह समाज का प्रतिमान होता है। यह सदा अनुकरणीय होता है। सही मायनों में आदर्श एक दुर्लभ लक्ष्य के समान है। परन्तु इस ओर अग्रसर होने का मतलब है एक सुचारू, श्रेष्ठ एवं हरेक दृष्टि से परिपूर्ण व्यवस्था की ओर बढ़ना। दूसरी ओर, कल्पना महज़ स्वप्नलोक ही नहीं बल्कि एक विचार प्रक्रिया भी है। अक्सर आदर्श को कल्पना के दायरे में देखा जाता है। आदर्श यदि समाज या व्यवस्था का प्रतिमान है तो कल्पना मन की उड़ान है। आदर्श यदि उत्तम, सर्वश्रेष्ठ व अनुकरणीय उदाहरण की स्तुति है तो कल्पना है नई बात, नई सोच की प्रस्तुति। इस प्रकार कल्पना एवं आदर्श में गहरा रिश्ता है। कल्पना से ही आदर्श फूटता है और आदर्श प्राप्ति की दिशा में प्रयत्नशील होने से ही यथार्थ की स्थापना होती है। इसलिये आदर्शवादी कल्पना बेहद सकारात्मक होती है, बस उसमें व्यावहारिकता का समावेशन ज़रूरी है। वसुधैव कुटुंबकम, आइडियल स्टेट या यूटोपियन समाजवाद आदि में कहीं-न-कहीं इसी व्यावहारिकता का लोप रहा जिस कारण ये फलीभूत नहीं हो पाए। अपनी कल्पना के मंदिर में रामराज्य की कामना करना तो आसान है किंतु इसे वास्तविकता के धरातल पर उतारना बहुत मुश्किल होता है। इसलिये एक आदर्श विश्व-व्यवस्था की मेरी कल्पना में महज़ आदर्श ही नहीं वरन् क्रूर यथार्थ भी शामिल है; अच्छाइयाँ हैं तो बुराइयाँ भी शामिल हैं तथा नैतिकता है तो व्यावहारिकता भी शामिल है। अतः वर्तमान वैश्विक व्यवस्था की चुनौतियों, विद्रूपताओं व संभावनाओं को परखते हुए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व पर्यावरणीय रूप से हमारी दुनिया कैसी होगी, इसी का रूपांकन हमारा अभीष्ट है।

राजनैतिक रूप से यदि विश्व को निहारें तो कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांशतः लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देश ही नज़र आते हैं। यह सराहनीय बात है कि अभी तक ज्ञात सभी शासन पद्धतियों में लोकतांत्रिक शासन पद्धति अपने कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद सर्वश्रेष्ठ है। यह जनता का, जनता के लिये तथा जनता के द्वारा शासन है। इसलिये दुनिया के जिन देशों में अभी भी राजतंत्र या तानाशाही शासन व्याप्त है वहाँ भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना, शासन में जन-भागीदारी बढ़ाने का अच्छा प्रयास होगा। इसके लिये नियमतः व कदाचारमुक्त चुनाव की गारंटी का ज़िम्मा सभी देशों की सरकारें लें तथा इसकी निगरानी हेतु एक वैधानिक विश्वव्यापी संस्था की स्थापना हो। इस प्रकार अखिल विश्व लोकतंत्रमय हो जाए और देशों के बीच आपसी सहयोग व भाईचारे में वृद्धि हो, यही एक आदर्श विश्व-व्यवस्था की मेरी कल्पना है।

सुरक्षा की परंपरागत धारणाओं में यह माना जाता है कि किसी देश की सुरक्षा को ज़्यादातर खतरा उसकी सीमा के बाहर से होता है। शीतयुद्धोत्तर काल से अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था एकतरफा हो गई है, इसलिये संघर्ष जारी है। परन्तु इस निर्मम मैदान में ऐसी कोई केंद्रीय ताकत नहीं है जो देशों के व्यवहार-बर्ताव पर अंकुश रखने में सक्षम हो। यहाँ यूएनओ की अक्षमता जगज़ाहिर है। सन्

खंड–9

विज्ञान–तकनीक से जुड़े विषयों पर आधारित निबंध

1 इंटरनेट पर 'निजता की सुरक्षा': एक बुनियादी चुनौती।

सुबह–सुबह समाचार–पत्र के पहले पन्ने पर मोटे–मोटे अक्षरों में यह लिखा दिख जाए कि इंटरनेट की शिकार महिला ने आत्महत्या की तो एक क्षण के लिये ही सही किसी भी सामान्य व्यक्ति (विशेषकर किशोरियों, युवतियों और महिलाओं) की देह सिहर उठेगी। यह समाचार कहीं–न–कहीं किसी व्यक्ति के निजी जीवन में इंटरनेट के माध्यम से किये जाने वाले हस्तक्षेप की ओर संकेत करता है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि आखिर इंटरनेट जैसे सुलभ संप्रेषण माध्यम के ज़रिये किसी व्यक्ति को निजी तौर पर नुकसान पहुँचाना कैसे संभव हुआ? यह सच है कि इंटरनेट ने हमारे दैनिक जीवन को सुविधाजनक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, लेकिन हर अच्छी चीज़ का एक अप्रिय पहलू भी होता है। इंटरनेट ने यूँ तो आम प्रयोक्ता के सामने कई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं लेकिन इंटरनेट प्रयोक्ताओं की निजता का हनन और उससे जुड़े अपराध वैश्विक स्तर पर बड़ी चिंता के विषय बन गए हैं। ये चुनौतियाँ काफी हद तक इंटरनेट की खुली प्रकृति के कारण उत्पन्न हुई हैं। हमें निरंतर सूचनाएँ देने और एक–दूसरे के निकट लाने की उसकी क्षमता का अपराधिक तत्त्वों के हाथों दुरुपयोग किया जाता है जो मासूम बच्चों और महिलाओं से लेकर सीधे–सादे नागरिकों तक को निशाना बनाने से नहीं चूकते।

इंटरनेट पर निजता के हनन की समस्या निरंतर गंभीर होती जा रही है। यह समस्या अब मात्र छोटे अपराधियों या शरारती तत्त्वों तक सीमित नहीं रह गई है बल्कि कुछ बड़ी कंपनियाँ भी अपने कारोबारी उद्देश्यों के लिये खुलेआम किसी व्यक्ति की निजता का हनन कर रही हैं। आज के बच्चे जिन समस्याओं को लेकर सर्वाधिक परेशान हैं, उनमें इंटरनेट के ज़रिये सताए जाने, छेड़खानी किये जाने, पीछा किये जाने, बदनाम किये जाने जैसी समस्याएँ प्रमुख हैं। दुनिया के बड़े–से–बड़े विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय साइबर बुलिंग, साइबर स्टॉकिंग, इंटरनेट ट्रॉलिंग, फिशिंग जैसे साइबर अपराधों से निपटने के लिये बड़ी मात्रा में समय, संसाधन और श्रम खर्च कर रहे हैं। यद्यपि ये समस्याएँ सिर्फ बच्चों और किशोरों तक सीमित नहीं हैं। इंटरनेट से जुड़ा कोई भी व्यक्ति गोपनीयता के परदे के पीछे छिपे दूसरे व्यक्ति द्वारा मानसिक प्रताड़ना का शिकार बनाया जा सकता है। हॉलीवुड और बॉलीवुड के बड़े–बड़े अभिनेता–अभिनेत्रियाँ तक 'साइबर बुलिंग' और 'साइबर स्टॉकिंग' से त्रस्त हैं। अनेक राजनेता भी इस तरह के अपराधों के शिकार हो चुके हैं। फेसबुक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी मार्क ज़ुकरबर्ग भी साइबर स्टॉकिंग के शिकार रहे हैं।

ये स्थितियाँ दर्शाती हैं कि जो इंटरनेट हमें तत्क्षण विभिन्न जानकारियों से अवगत कराने, किसी कार्य विशेष को अतिशीघ्रता से संपन्न करने (जैसे–मेल भेजना, धनराशि हस्तांतरण आदि) में एक सहज विकल्प के रूप में प्रस्तुत होता है वह किसी भी व्यक्ति को सहजता से हानि पहुँचाने के लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

डिजिटल माध्यमों के ज़रिये निशाना बनाने वाला व्यक्ति कोई भी हो सकता है; ज़रूरी नहीं कि हम उसे जानते ही हों। उदाहरण के लिये यदि हम किसी अनजान स्रोत से नि:शुल्क सॉफ्टवेयर लेकर अपने कम्प्यूटर में उसे इन्सटॉल करें तो हो सकता है कि उसमें स्पाईवेयर (Spyware) प्रोग्राम भी डाल दिया गया हो, जो बिना हमारी जानकारी के हमारे कम्प्यूटर की सूचनादि को किसी तीसरे तक पहुँचाने के लिये प्रयुक्त किया जाए। वह पूरी तरह अनजान व्यक्ति भी हो सकता है या फिर ऐसा व्यक्ति जिससे हम प्रत्यक्ष रूप से कभी न मिले हों लेकिन सोशल नेटवर्किंग, मैसेजिंग प्लेटफॉर्मों आदि पर संपर्क में रहे हों। ऐसे ज़्यादातर मामलों का कारण ईर्ष्या, द्वेष, संबंध–विच्छेद, झगड़ा या फिर कोई मानसिक विकृति होती है। कुछ लोग तो मात्र मौज–मस्ती के लिये किसी

खंड–10

सामाजिक/सांस्कृतिक विषयों पर आधारित निबंध

1 दलित विमर्श : दशा और दिशा।

"समय मांगता है मुझसे हिसाब
पढ़े क्यों नहीं! नहीं है इसका जवाब, मेरे पास
तुमने अपनी वर्जनाओं से, काट ली थी मेरी जिह्वा
मेरे होंठ ही सिल दिये थे
मेरे कानों में, पिघला हुआ शीशा भी उड़ेल दिया था
तुम्हारी इस करनी पर
मेरी धमनियों में खौल रहा है बहता लहू
समय के साथ इसका, मैं दूंगा माकूल जवाब
मेरी जगह पढ़ेंगे मेरे बच्चे ज़रूर!"

दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के धातु 'दल्' से हुई है, जिसका अर्थ है- तोड़ना, कुचलना। संस्कृत शब्दकोशों में दलित शब्द का अर्थ है- दला गया, मर्दित, पीसा गया। मानक हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्दकोशों में दलित शब्द के लिये डिप्रेस्ड (Depressed) शब्द मिलता है। गांधी ने उन्हें ईश्वर का पुत्र यानी 'हरिजन' कहा, किंतु दलित राजनेताओं को इस शब्द में अपमान की बू आती थी, क्योंकि उन्हें लगता था कि यह शब्द ज़मीनी वास्तविकता को ढाँपना चाह रहा है, अत: धीरे-धीरे हरिजन शब्द का प्रयोग बंद हो गया। संविधान में दलित समुदाय के लिये अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया, पर दलित आंदोलन से जुड़े लोग गैर-सवर्ण सभी जातियों को दलितों के तहत परिगणित करते हैं, जिनमें अन्य पिछड़े वर्ग व आदिवासी समुदाय भी शामिल हैं। दलितों के सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक डॉ. अम्बेडकर का भी यही मानना था कि भारत में जिन भी समुदायों को ब्राह्मणवाद द्वारा पोषित विषमता का सामना करना पड़ा, वे सभी दलित हैं। दलित विमर्श साहित्य के माध्यम से वर्ण व्यवस्था का विरोध करके विषमता रहित मानव मूल्यों की स्थापना के लिये संघर्ष करता है, ब्राह्मणवादी अथवा मनुवादी प्रतीकों तथा प्रथाओं का निषेध करता है तथा सदियों से पिछड़ी और अछूत मानी जाने वाली जातियों के लिये अवसर, साधन एवं शिक्षा उपलब्ध कराने का समर्थन करता है। दलित विमर्श अपनी विचारधारा निर्माण के लिये डॉ. अम्बेडकर की मान्यताओं को आधार बनाता है। स्वयं डॉ. अम्बेडकर नारायण गुरु, ज्योतिबा फुले व रामास्वामी नायकर से प्रभावित थे। फ्राँसीसी क्रांति के आदर्शों स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का भी उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था। इन विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने दलित साहित्य के निर्माण की प्रेरणा के संदर्भ में तीन प्रमुख विचार सूत्रों पर बल दिया- 1. स्वाभिमान, स्वावलंबन, स्वउभार, 2. शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष, 3. मानवीय अधिकार प्राप्ति के लिये संघर्ष। दलित साहित्य पर अम्बेडकर के विचारों का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। आत्मशक्ति एवं स्वावलंबन की भावना से भरकर रचनाकारों ने डॉ. अम्बेडकर के प्रतिनिधित्व में, 'दलित मुक्ति आंदोलन' का आरंभ किया।

दलित विमर्श की नींव ज्योतिबा फुले ने अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' से रखी। हालाँकि इसका दायरा डॉ. अम्बेडकर ने विस्तृत किया। 1920 में उन्होंने 'मूक नायक' नामक पत्रिका का आरंभ किया जिसमें वर्ण-व्यवस्था का विरोध तथा दलित वर्गों को प्रबोधन देने का लक्ष्य कथ्य के रूप में चयनित किया गया था। सन् 1927 में डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण-व्यवस्था के विरोध में क्रांतिधर्मी आंदोलन आरंभ किया। यही वह समय था जब दलितों के भीतर जागृति की लहर उठी और उन्होंने रचनात्मकता के माध्यम से

खंड–11

साहित्यिक विषयों से जुड़े निबंध

1 साहित्य की ज़िम्मेदारी है कि वह दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो।

"जब कभी भी बात जंगल, नदी, पहाड़
रोटी, झोपड़ी, पेट, गरीब, देश की होगी
हम यूँ ही दर्ज करते रहेंगे
अपने तीखे प्रतिवाद
हम यूँ ही रचते रहेंगे विद्रोह की भाषा
हम अपनी ज़िद के ना-हद तक बागी हैं
हमारा देश हमारी ज़िद है!"

साहित्यकार सर्जक होने के नाते विशिष्ट होने के बावजूद सबसे पहले सामान्य नागरिक ही होता है, संवेदनशीलता एवं परिवर्तनकारी होना उसका सहज स्वभाव होता है। ऐसे में यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि कोई साहित्यकार दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो और इससे आगे जाकर वह वैकल्पिक रास्तों तक जाने की अंतश्चेतना रचता हो। इसी भावना को एक दलित कवि नामदेव ढसाल वाणी दे रहे हैं-

"मुझे नहीं बसाना है अलग से स्वतंत्र द्वीप
फिर मेरी कविता, तू चलती रह सामान्य ढंग से
आदमी के साथ उसकी उंगली पकड़ कर,
× × × × × ×
सत्य-असत्य के संघर्ष में खो नहीं दिया मैंने खुद को
मेरी भीतरी आवाज़, मेरा सचमुच का रंग,
मेरे सचमुच के शब्द
मैंने जीने को रंगों से नहीं,
संवेदनाओं के कैनवस पर रंगा है।"

दुनिया में दो तरह की शक्तियाँ हैं- सृजन की एवं विध्वंस की। साहित्य सृजन की शक्तियों की एक समर्थ अभिव्यक्ति है। विध्वंस की शक्तियों ने ही इस दुनिया में दलित, शोषित एवं वंचित पैदा किये हैं इसलिये यह स्वाभाविक है कि साहित्य दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो। पर दुर्भाग्य से ऐसा हमेशा नहीं रहा है। कभी अनजाने में, कभी जान-बूझकर, कभी उदासीनता की भावना ने ऐसा होने नहीं दिया है। यदि भारत की बात की जाए तो वैदिक साहित्य एक सर्वकल्याणकारी चेतना से युक्त है, उसमें इसलिये अलग से पक्षधरता दिखलाने की ज़रूरत ही न थी। वाल्मीकि, जो भारत के आदिकवि माने गए हैं, उनका कवित्व एक क्रौंच पक्षी के शोक को देखने के बाद जाग उठा था और उनके मुँह से विषाद के साथ निषाद के लिये शाप भी फूट पड़ा था *"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।"* पर यही संवेदनशील वाल्मीकि शंबूक वध प्रकरण में बेहद सख्त बन गए। निश्चय ही इस तरह के अंतर्विरोधों से दुनिया के हर देश का प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है क्योंकि तब साहित्य पर ईश्वर, राजा एवं सामंतों का यूँ कब्ज़ा था कि उसमें वंचित-दलित-शोषित तत्त्वों के लिये स्थान निकलना

खंड–12

महापुरुषों के व्यक्तित्व से जुड़े निबंध

1 डॉ. अम्बेडकर : एक युगद्रष्टा एवं क्रांतिकारी समाज सुधारक।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नामांतर के बाद भी दलितों के घर जला दिये गए। परभणी ज़िले के गिरगाँव में दलितों के जलाए गए घर पूरी तरह खाक हो गए थे। दलित बस्ती पूरी तरह जलकर खाक हो गई थी। जले हुए घरों की ओर एक अधेड़ उम्र की महिला देख रही थी। उस महिला ने चश्मे से लेखक की ओर देखा। लेखक कहते हैं- *"माई बहुत नुकसान हुआ है न!"* महिला ने आक्रोश में कहा- *"अरे बेटा जलाने दे, मेरा घर जलाने दे, पैसा जलाने दे, ज्वार जलाने दे; लेकिन मेरे सीने में जो बाबा साहेब का स्वाभिमान रेखांकित है, उसे कोई जला सकेगा क्या? है किसी में हिम्मत? मेरे बाबा साहेब को कोई नहीं जला सकता।" महिला अपने सीने पर हाथ रखकर कह रही थी। लेखक की आँखों में आँसू आ गए, कहा- "माई आपने सच ही कहा है, हमारे बाबा साहेब को कोई नहीं जला सकता.... कोई नहीं.....।"*

(मराठी पुस्तक 'जग बदल घालुनी घाव' या 'दुनिया बदलने को किया वार' से उद्धृत)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर आज भी हर उस प्राण में बसते हैं, जो सामाजिक शोषण की व्यवस्था से दमित है। हर वह वर्ग जिसने सदियों का संताप झेला है, चाहे वे शूद्र हों या नारी, वे बाबा साहेब के स्वाभिमान को हृदय में रेखांकित किये रहते हैं। बाबा साहेब की उपस्थिति आज भी हर क्रांति, हर बदलाव, दमन के विरुद्ध हर आंदोलन के स्वर में ध्वनित होती है।

प्रत्येक राष्ट्र वहाँ निवास करने वाले समूहों के साझे इतिहास, संस्कृति, स्वप्न एवं आकांक्षाओं की ही भौगोलिक एवं राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक स्वरूप होता है। इस स्वरूप पर ऐतिहासिक कटुताओं की स्मृति या सामाजिक हितों के टकराव की छाया आधुनिक राष्ट्रों के लिये एक आम चुनौती की तरह रही है। इन चुनौतियों के समक्ष कई राष्ट्र बिखर गए तो कुछ राष्ट्रों ने इन चुनौतियों को सुलझाने की बजाय उनका दमन करने का निर्णय लिया। दरअसल, बेहतर तो यही माना जाता है कि इतिहास में लम्बे समय से चली आ रही कुरीतियों एवं उनके कारण पैदा हुए सामाजिक विभाजन जैसी समस्याओं को सुलझाने हेतु नेतृत्व का उदय समाज के भीतर से ही होना चाहिये। यह नेतृत्व ही अपनी दूरदृष्टि, समझदारी और साहस से यह तय करे कि एक समतामूलक एवं सशक्त समाज का निर्माण समस्याओं को निर्ममतापूर्वक कुचलकर अथवा उन्हें दरकिनार करके नहीं वरन् उनका विश्लेषण एवं अध्ययन करके लोकहित एवं लोकसम्मति के आधार पर हो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को आधुनिक भारत में उभरे एक ऐसे ही नेतृत्व के प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

महार (दलित) जाति में जन्मे अम्बेडकर को अपने शुरुआती जीवन में ही भारत में जाति व्यवस्था के कारण होने वाले भेदभाव का कटु अनुभव हो गया था। अपनी मेहनत एवं लगन से बम्बई विश्वविद्यालय एवं तत्पश्चात् अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करके जब वे भारत वापस लौटे तो रूढ़ियों में जकड़े भारतीय समाज एवं सदियों से उन रूढ़ियों का भार ढो रहे दलित समाज के उत्थान के लिये वे कृतसंकल्प थे। आने वाले वर्षों में जाति-उन्मूलन के आंदोलन को एक नया आयाम देकर एवं आज़ादी के बाद भारतीय संविधान के रूप में भारतीय जनमानस के लिये एक प्रगतिशील और उदार संविधान की नींव रखकर, उन्होंने स्वयं को राष्ट्र निर्माताओं की प्रथम कोटि में पहुँचा दिया।

एक समाज सुधारक के रूप में अम्बेडकर को जहाँ एक ओर कबीर और ज्योतिबा फुले की समाज सुधार की परंपरा में देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर छुआछूत के उन्मूलन के लिये उनके द्वारा किये गए संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास उन्हें एक क्रांतिकारी कलेवर भी प्रदान करते हैं। अम्बेडकर के इन स्वरूपों को समझने हेतु उनके कार्यों का एक लघु चित्रण सहायक होगा। अम्बेडकर

निबंध के लिये उपयोगी उद्धरण

खंड-क : विषय आधारित उद्धरण

राष्ट्रभाषा/हिंदी भाषा/भाषा

- *निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।*
  बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
  विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
  सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।।
  -भारतेंदु हरिश्चंद्र
- *संसकिरत है कूपजल, भाखा बहता नीर। -कबीर*
- *का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच। -तुलसीदास*
- *अपनी भाषा के बिना, राष्ट्र न बनता राष्ट्र।*
  बसे वहाँ महाराष्ट्र या, रहे वहाँ सौराष्ट्र।। -गोपालदास 'नीरज'
- *समस्त भारतीय भाषाओं के लिये यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।*
  -(जस्टिस) कृष्णस्वामी अय्यर
- *विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है। -वाल्टर चेनिंग*
- *हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।*
  -राजेंद्र प्रसाद
- *राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। -महात्मा गांधी*
- *हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है। -कमलापति त्रिपाठी*
- *हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। -जवाहरलाल नेहरू*
- *यदि तुम एक व्यक्ति से उस भाषा में बात करते हो जिसे वह समझता है तो ऐसी भाषा उसके दिमाग में प्रवेश करती है। यदि तुम उस व्यक्ति से उसी की भाषा में बात करते हो तो वह उसके हृदय में प्रवेश करती है। -नेल्सन मंडेला*
- *प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी अन्य किसी चीज़ से संभव नहीं।*
  -सुभाष चंद्र बोस
- *हिंदी आम बोलचाल की 'महाभाषा' है। -जॉर्ज ग्रियर्सन*
- *आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिये। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिये।*
  -महावीर प्रसाद द्विवेदी
- *जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख*
  और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख
  -भवानी प्रसाद मिश्र

कला/सिनेमा

- *सिनेमा की खास विशेषता मानव मन की अंतरंगता को पकड़ने और संवाद करने की अपनी क्षमता है। -सत्यजीत रे*
- *कला एक प्रकार का नशा है जिससे जीवन की कठोरताओं से विश्राम मिलता है। -सिग्मंड फ्रॉयड*
- *तस्वीर एक कविता है जिसके शब्द नहीं। -होरेस*
- *एक अच्छा चित्र लंबे भाषण से बेहतर होता है।*
  -नेपोलियन बोनापार्ट
- *कला या तो साहित्यिक चोरी है या फिर एक क्रांति।*
  -पॉल गौगुइन
- *जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का सांचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला आता है। -रामचंद्र शुक्ल*

बाज़ार/अर्थव्यवस्था/पूंजीवाद

- *ये नए युग के सौदागर हैं,*
  बेचना और खरीदना नहीं
  केवल छीनना जानते हैं,
  ये कभी सामने नहीं आते
  रहते हैं कहीं दूर समंदर के इस या उस पार।
  -मदन कश्यप

Think IAS | **दृष्टि** *The Vision* | Think Drishti

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

इस कार्यक्रम के अंतर्गत आप घर बैठे 'दृष्टि' द्वारा तैयार परीक्षोपयोगी पाठ्य-सामग्री मंगवा सकते हैं। यह पाठ्य-सामग्री विशेष रूप से ऐसे अभ्यर्थियों को ध्यान में रखकर तैयार की गई है जो दिल्ली आकर कक्षाएँ करने में असमर्थ हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सिविल सेवा और राज्य सेवा (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ पी.सी.एस.) परीक्षाओं की पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। यह पाठ्य-सामग्री प्रत्येक परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुरूप है और इसे विभिन्न समसामयिक घटनाओं, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं समितियों की रिपोर्टों के माध्यम से अद्यतन (up-to-date) किया गया है।

उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. (UPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 + 10 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(33 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

मध्य प्रदेश पी.सी.एस. (MPPCS) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

उत्तराखंड पी.सी.एस. (UKPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 + 8 बुकलेट्स) (₹11,000/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(28 बुकलेट्स) (₹10,000/-)

छत्तीसगढ़ पी.सी.एस. (CGPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 + 6 बुकलेट्स) (₹15,500/-)

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(35 बुकलेट्स) (₹14,000/-)

राजस्थान पी.सी.एस. (RAS/RTS) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(34 बुकलेट्स) ₹10,500/-

बिहार पी.सी.एस. (BPSC) के लिये

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(25 बुकलेट्स) ₹10,000/-

For UPSC CSE (in English Medium)

Self Learning Modules

Students may opt for following modules

- Prelims (17 GS + 3 CSAT Booklets) ₹10000/-
- Mains (16 GS Booklets) ₹11000/-
- Prelims + Mains (33 GS + 3 CSAT Booklets) ₹15000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine with every module

For UPPCS Mains (in English Medium)

Self Learning Modules

19 GS + 1 Essay +
1 Compulsory Hindi Booklets
₹11000/-

Offer: Free 6 months subscription of Drishti Current Affairs Today magazine for comprehensive coverage of current affairs

UPSC सिविल सेवा परीक्षा के लिये (हिंदी माध्यम में)

सामान्य अध्ययन
(प्रारंभिक परीक्षा)
(19 बुकलेट्स) ₹10,000/-

सामान्य अध्ययन
(मुख्य परीक्षा)
(26 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रारंभिक परीक्षा)
(27 बुकलेट्स) ₹13,000/-

सामान्य अध्ययन
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(31 बुकलेट्स) ₹15,000/-

सामान्य अध्ययन + सीसैट
(प्रा.+ मुख्य परीक्षा)
(39 बुकलेट्स) ₹17,500/-

इतिहास
(वैकल्पिक विषय)
(12 बुकलेट्स) ₹7,000/-

दर्शनशास्त्र
(वैकल्पिक विषय)
(4 बुकलेट्स) ₹5,000/-

हिन्दी साहित्य
(वैकल्पिक विषय)
(13 बुकलेट्स) ₹7,000/-

विस्तृत जानकारी के लिये कॉल करें : 8448485520, 87501-87501, 011-47532596

लेखक परिचय

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

पेशे से अध्यापक व लेखक डॉ. विकास दिव्यकीर्ति की गहरी रुचि विविध विषयों को पढ़ने और अनुसंधान करने में रही है। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में बी.ए. (ऑनर्स) किया तथा उसके बाद विषय-परिवर्तन करके हिंदी साहित्य में एम.ए, एम.फिल. तथा पी.एच.डी. की पढ़ाई की। बाद में उन्होंने समाजशास्त्र तथा जन-संचार विषयों में एम.ए.; विधि विषय में स्नातक (एल.एल.बी.) तथा आई.आई.टी. दिल्ली से प्रबंधन में सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम किया। वे हिंदी साहित्य से यू.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. तथा समाजशास्त्र से नेट की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर चुके हैं और उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा भारतीय विद्या भवन से अंग्रेज़ी-हिंदी अनुवाद में पी.जी. डिप्लोमा भी किया है। दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, सिनेमा अध्ययन, सामाजिक मुद्दे और राजनीति विज्ञान (विशेषतः भारतीय संविधान) उनकी रुचि के अन्य विषय हैं।

डॉ. विकास ने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य से की। उसके बाद उन्होंने 1996 की सिविल सेवा परीक्षा में अपने पहले प्रयास में सफलता हासिल की और लगभग एक वर्ष तक भारत सरकार के गृह मंत्रालय में कार्य किया। उसके बाद वे अपने पद से त्यागपत्र देकर पुनः शिक्षण के क्षेत्र में उतरे और 'दृष्टि संस्थान' की स्थापना की। आजकल वे अध्यापन-कार्य के साथ-साथ समसामयिक मुद्दों की मासिक पत्रिका 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे' के लिये प्रधान संपादक की भूमिका भी निभा रहे हैं।

वर्तमान में डॉ. विकास कुछ पुस्तकों के लेखन व संपादन की प्रक्रिया में जुटे हैं। उनकी भावी योजनाओं में शिक्षा तथा मीडिया क्षेत्रों से जुड़े कुछ सामाजिक उद्यम शामिल हैं।

निशान्त जैन

यूपीएससी की वर्ष 2014 की सिविल सेवा परीक्षा में 13वीं रैंक हासिल करने वाले निशान्त जैन, हिन्दी/भारतीय भाषाओं के माध्यम के टॉपर हैं। मुख्य परीक्षा में देश के तीसरे सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले निशान्त ने निबंध और वैकल्पिक विषय (हिंदी साहित्य) के प्रश्नपत्र में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए थे। उत्तर प्रदेश के मेरठ में साधारण पृष्ठभूमि में पले-बढ़े, निशान्त ने UPSC की सिविल सेवा परीक्षा के अपने दूसरे प्रयास में सफलता प्राप्त की।

इतिहास, राजनीति विज्ञान और अंग्रेज़ी में ग्रेजुएशन और हिंदी साहित्य में पोस्ट-ग्रेजुएशन के बाद यूजीसी की नेट-जे.आर.एफ. परीक्षा उत्तीर्ण की। कॉलिज के दिनों में डिबेट, काव्यपाठ, निबंध लेखन और क्विज़ प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते रहे निशांत ने दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.फिल. की उपाधि प्राप्त की है। सिविल सेवा में चयनित होने से पहले वह लोक सभा सचिवालय के राजभाषा प्रभाग में भी दो साल सेवा कर चुके हैं।

LBSNAA में IAS की दो वर्ष की ट्रेनिंग के उपरांत उन्हें JNU से पब्लिक मैनेजमेंट में पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री प्राप्त हुई।

कविताएँ लिखने और युवाओं से संवाद स्थापित करने में रुचि रखने वाले निशान्त ने सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए 'मुझे बनना है UPSC टॉपर' के नाम से एक किताब भी लिखी है, जिसका इंग्लिश और मराठी में अनुवाद भी लोकप्रिय है। यूट्यूब व सोशल मीडिया पर उनके लेक्चर/वीडियो काफी लोकप्रिय हुए हैं।

वह भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) के 2015 बैच के अधिकारी हैं। उनका ब्लॉग है nishantjainias.blogspot.in

641, Ist Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtipublications.com, www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-81-934662-0-9

मूल्य : ₹ 380